बी० ए० पार्ट–3 हिन्दी साहित्य (प्रतिष्ठा)

डॉ० आशा कुमारी

अंशकालीन व्याख्याता

हिन्दी विभाग

मगध महिला कॉलेज, पटना

मोबाइल नम्बर–9304098602,7004661162

Email _ ashakumari2500@Gmail.com

प्रेमचंद की विचारधारा

प्रेमचंद हिंदी के अपने ढंग के एक ही उपन्यासकार हुए हैं। जब उर्दू के उपन्यासों का बोलबाला था और लोग हिंदी के उपन्यासों को पढ़ते–पढ़ाते नहीं थे, उस समय जिन लेखकों ने हिंदी में उपन्यास लिखकर हिंदी की श्रीवृद्धि की, उनमें प्रेमचंद का नाम सर्वोपरि आता है। उन्होंने अपने साहित्य सृजन की कालवधि में काफी पढ़ा, जीवन–संघर्षो से नाना अनुभव प्राप्त किये और लिखते–लिखते वह अपनी कला में परिष्कार करते गये। व्यावहारिक रूप में उपन्यास एवं कहानियों की रचना करने के साथ–साथ उन्होंने साहित्य के स्वरूप एवं प्रविधि के संबंध में अपने सैद्धांतिक विचारों को भी प्रस्तुत किया है। प्रौढ़ साहित्यकार के उद्‌गार होने के कारण प्रेमचंद के इन विचारों का निजी एवं स्थायी महत्व है। इनके साहित्य की परिभाषा, उद्देश्य, आदर्शवाद–यथार्थवाद तथा भाषा के स्वरूप से संबद्ध विचारों को देखा जा सकता है–

साहित्य परिभाषा और उद्देश्य– प्रेमचंद जी ने कहा है कि साहित्य की सर्वोत्तम परिभाषा जीवन की आलोचना है। चाहे वह निबंध के रूप में हो, चाहे कहानियों के या काव्य के, उसे हमारे जीवन की आलोचना और व्याख्या करनी चाहिए। वास्तव में साहित्य गुण–दोष का विश्लेषण करने वाला आलोचक ही नहीं है, यह विधायक कलाकार है। वह जीवन की समस्याओं पर विचार भी करता है और उन्हें हल करता है।

साहित्यकार या कलाकार स्वभावतः प्रगतिशील होता है। अगर यह उसका स्वभाव न होता तो शायद वह साहित्यकार ही न होता। उसे अंदर भी एक कमी महसूस होती है और बाहर भी। इसी कमी को पूरा करने के लिए उसकी आत्मा बेचैन रहती है। अपनी कल्पना में वह व्यक्ति और समाज को सुख और स्वच्छंदता की जिस अवस्था में देखना चाहता है, वह उसे दिखाई नहीं देती इसीलिए वर्तमान मानसिक और सामाजिक अवस्थाओं से उसका दिल कुढ़ता रहता है। वह इन अप्रिय अवस्थाओं का अंत कर देना चाहता है, जिससे दुनिया में जीने मरने के लिए इससे अधिक अच्छा स्थान हो जाए। यही वेदना और यही

भाव उसके हृदय और मस्तिष्क को सक्रिय बनाये रखता है। उसका दर्द से भरा हृदय इसे सहन नहीं कर सकता कि एक समुदाय क्यों सामाजिक नियमों और गरीबी से छुटकारा पा जाय। वह इस वेदना को जितनी बेचैनी के साथ अनुभव करता है, उतना ही उसकी रचना में जोर और सच्चाई पैदा होती है। अपनी अनुभूतियों को वह जिस क्रमानुपात में व्यक्त करता है वहीं उसकी कला–कुशलता का रहस्य है। वस्तुतः साहित्य उसी रचना को कहेंगे जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गई हो, जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित और सुंदर हो और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो–और साहित्य में यह गुण पूर्णरूप में उसी अवस्था में उत्पन्न होता है, जब उसमें जीवन की सच्चाइयाँ और अनुभूतियाँ व्यक्त की गई हों।

साहित्य की प्रवृत्ति अहंवाद या व्यक्तिवाद तक परिमित नहीं रह गई है, बल्कि वह मनोवैज्ञानिक और सामाजिक होता जाता है। जब वह व्यक्ति को समाज से अलग नहीं देखता है इसलिए नहीं कि वह समाज पर हुकूमत कर, उसे अपने स्वार्थ–साधना के अस्तित्व के साथ उसका अस्तित्व कायम है और समाज से अलग होकर उसका मूल्य शून्य के बराबर हो जाता है।

साहित्य में एक सार्थक आदर्श लेकर चलने के लिए यह आवश्यक है कि हमारी सुंदरता का मापदंड बदले। अभी तक यह मापदंड सामंती और पूँजीपतिक ढंग का रहा है। अगर सौंदर्य देखने वाली दृष्टि में विस्तृति आ जाये तो वह देखेगा कि रंगे होठों और कपड़ों की आड़ में अगर रूप, गर्व और निष्ठुरता छिपी है, तो इन मुरझाये हुए होठों और कुहंलाए हुए गालों के आँसुओं में त्याग, श्रद्धा और कष्ट–सहिष्णुता है। हाँ, उसमें नफासत नहीं, दिखावट नहीं, सुकुमारता नहीं। वस्तुतः साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफिल सजाना और मनोरंजन का सामान जुटाना नहीं है–उसका दर्जा इतना न गिराइए। वह देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई भी नहीं, बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है। यह राजनीति के पीछे चलने वाली चीज नहीं, उसके आगे–आगे चलने वाली एडवांस गार्ड है। वह उस विद्रोह का नाम है जो मनुष्य के हृदय में अन्याय, अनीति और कुरूचि से उत्पन्न होता है।

हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिंतन हो स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो–जो हम में गति और संघर्ष को बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं–क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है। सच्चा कलाकार बनने के लिए उसे संकीर्णता और स्वार्थ से ऊपर उठना होगा। संकीर्णता से ऊपर उठकर उसे अपनी सौंदर्यान्वेषी दृष्टि से सौंदर्य का ऐसा स्थल खोजना होगा जो केवल रूप–रंग तक ही सीमित नहीं है। उसे अंतर का सौंदर्य–उच्च भावों का सौंदर्य, कर्म का सौंदर्य परखना होगा।

साहित्य में आदर्शवाद–यथार्थवाद –प्रेमचंद का स्पष्ट मत है कि यथार्थवाद हमारी दुर्बलताओं, हमारी विषमताओं और हमारी क्रूरताओं का नग्न चित्र होता है। और इस तरह

यथार्थवाद हमको निराशावादी बना देता है, मानव–चरित्र से हमारा विश्वास उठ जाता है, हमको अपने चारों तरफ बुराई ही बुराई नजर आने लगती है। इसी तरह अंधेरी गर्म कोठरी में काम करते–करते जब हम थक जाते हैं तो इच्छा होती है कि किसी बाग में निकलकर निर्मल स्वच्छ वायु का आनंद उठायें–इसी काम को आदर्शवाद पूरा करता है। साहित्य में दोनों के अलग–अलग प्रयोजन हैं। यथार्थवाद यदि हमारी आँखें खोल देता हैं तो आदर्शवाद हमें उठाकर किसी मनोरम स्थान में पहुँचा देता है। एक तो हमें अपने जीवन और जग की परिस्थितियों से परिचित कराता है, दूसरा हमारे यथार्थ के प्रभावों को भाव–भरी कल्पना प्रदान कराता है, दूसरा हमारे यथार्थ के प्रभावों को भाव–भरी कल्पना प्रदान करता है तब उच्च कोटि का साहित्य वही है जहाँ यथार्थ और आदर्श का समावेश हो गया है। उसे आप आदर्शोन्मुख यथार्थवाद कह सकते हैं। यथार्थ को प्रेरक बनाने के लिए आदर्श और आदर्श को सजीव बनाने के लिए ही यथार्थ का उपयोग होना चाहिए।

इन्हीं भावों को स्पष्ट करते हुए प्रेमचंद ने अन्यत्र लिखा है कि मैं यथार्थवादी नहीं हूँ कहानी में वस्तु ज्यों की त्यों रखी जाय तो वह जीवन–चरित्र हो जाएगी। शिल्पकार की तरह साहित्यकार का यथार्थवाद होना आवश्यक नहीं, यह हो भी नहीं सकता। साहित्य की सृष्टि मानव–समुदाय को आगे बढ़ाने–उठाने के वास्ते ही होती है। आदर्श अवश्य हो, लेकिन यथार्थवाद और स्वाभाविकता के प्रतिकूल न हो। उसी तरह, यथार्थवादी भी आदर्श को न भूले तो वह श्रेष्ठ है। हमें तो सुंदर भावों को चित्रित करके मानव–हृदय को ऊपर उठाना है, नहीं तो साहित्य की महत्ता और आवश्यकता क्या रह जाएगी?

भाषा का स्वरूप –प्रेमचंद क्लिष्ट भाषा के स्थान पर सरल भाषा को महत्व देते हैं और उर्दू की अपेक्षा हिंदी का प्रसार चाहते हैं। उनके अनुसार केवल एक ही भाषा ऐसी है जो देश के एक बहुत बड़े भाग में समझी जाती है; और उसी को राष्ट्रीय भाषा का पद दिया जा सकता है परंतु इस समय उस भाषा के तीन स्वरूप हैं–उर्दू, हिंदी और हिंदुस्तानी। अभी तक यह बात राष्ट्रीय रूप से निश्चित नहीं की जा सकी है कि इनमें से कौन–सा स्वरूप ऐसा है जो देश के विकास में सही साबित हो। वास्तविक बात तो यह है कि भारतवर्ष की राष्ट्रीय भाषा न तो वह उर्दू ही हो सकती है जो अरबी और फारसी के अप्रचलित तथा अपरिचित शब्दों से लदी हुई होती है। हमारी राष्ट्रभाषा तो वहीं हो सकती है। जिसका आधार सर्वसामान्य बोधगंयता हो जिसे सब लोग सहज में समझ सकें।

अतः कहा जा सकता है कि प्रेमचंद ने केवल कथा–कहानियों के निरूपण तक ही सीमित न रहकर सैंद्धांतिक सूक्ष्म दृष्टि का भी परिचय दिया है। साहित्य के संबंध में उनके ये विभिन्न विचार प्रौढ़ मस्तिष्क के परिचायक हैं। इन सिद्धांत–वाक्यों के संबंध में विद्धानों में मतभेद नहीं हो सकता। इन सिद्धांतों का प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में भी पूर्णतः अनुसरण किया है। वस्तुतः उनके सिद्धांत और उपन्यास दो अलग वस्तु न होकर एक–दूसरे के अनुपूरक है।